मेरा कार्य पूर्ण कराओ प्रार्थना का फल उल्टा हुआ और जिस कार्य की पूर्ति में मैं लगा हुआ था, वह और उलझता ही गया। इतना ही नहीं 24 दिसम्बर,1976 को मेरे घर पर बाबा का कीर्तन था और मैं अपरान्ह तीन बज़े माला इत्यादि बनाने में जुटा हुआ था तभी एकाएक मुझे ह्रदय रोग का दौरा पड़ा। दौरा के दौरान ही ..... निरोग होने पर मैं पुनः पूर्ववत् कीर्तन आदि में भाग लेने लगा।

प्यारे रामवृक्ष जी,आप इस कटु अनुभव के बाद भी गल्ती कर रहे हैं यही बहुत बड़ी विडम्बना है। यह आपकी अज्ञानता का सूचक है। आप अब भी चेतें। ज्ञानी बनें। अज्ञानता ही दुख का कारण है।

शरीर अथवा मन का स्वभाविक झुकाव जिन क्रियाओं के प्रति हो उन क्रियाओं के करने में सतर्कता बरतनी चाहिए। क्रिया करते समय शरीर अथवा मन पर नियंत्रण भी रखना चाहिए। यथा संभोग के प्रति मन और शरीर का स्वभाविक झुकाव होता है। यहाँ नियंत्रण की आवश्यकता है। बालपन में खेलकूद के प्रति स्वभाविक आकर्षण होता है। खेलकूद पर नियंत्रण की आवश्यकता है।

शरीर अथवा मन जिन क्रियाओं के करने में स्वभाविक विरोध प्रकट करे वह क्रिया कभी भी नहीं करनी चाहिए अन्यथा परिणाम दुःख,शोक और रोग ही होगा। यथा छुरा से हाथ कटने पर स्वभाविक पीड़ा का अनुभव होता है,आग में हाथ डालने से स्वभाविक कष्ट होता है। अतः यह क्रियाऐं कभी नहीं करनी चाहिए। रातभर जाग कर भजन के नाम पर होहल्ला करना पशुता से भी नीच व्यवहार है।

इसका फल सुख कभी नहीं हो सकता है। मैं पुनः कहता हूँ कि जिन क्रियाओं के प्रति स्वभाविक विरक्ति हो (जिन क्रियाओं में शारीरिक क्लेश का अनुभव हो) उनसे दूर रहना चाहिए।

प्यारे रामवृक्ष जी ,मैं तर्क द्वारा आपको इस विषय का ज्ञान नहीं करा सकता हूँ। कारण, तर्क के दो धार होते हैं। उल्टा तर्क भी दिया जा सकता है। यथा दण्ड बैठक इत्यादि व्यायाम करने से पहले-पहले देह में दर्द होता है, किन्तु बाद में शरीर शक्तिशाली बन जाता है। पढ़ने के समय तकलीफ होती है,किन्तु कालन्तर में पढ़ाई का फल मीठा होता है इत्यादि। तर्क देकर कोई भी अच्छा तार्किक मेरे उपर्युक्त वाक्य का खण्डन कर सकता है।

अतः आपको अपने आप से ही पूछना पड़ेगा,मौन होकर एकांत में बैठें, चिंतन करें,क्या ठीक क्या गलत है, उत्तर मिल जायेगा। आप बच्चे नहीं हैं। आप चिंतन कर सकते हैं,जो व्यक्ति चिंतन नहीं कर सके,उस पर यह नियम लागू नहीं होगा यथा शिशु।

"भाग्य की विडम्बना" के चौथे शुभारंभ में आपने लगभग वही बातें दोहराईं हैं,जो आपने तीसरे शुभारंभ में लिखा है। क्या मेरी ..... इसमें सहायतार्थ मैं बाबा से तथा अन्य देवी देवताओं से निरन्तर प्रार्थना करता जा रहा हूँ और विडम्बना यह है जितनी प्रार्थना करता जा रहा हूँ समस्या उतनी ही उलझती जा रही है। इससे मेरी आस्था प्रायः डगमगाने लगती है। विश्वास उठता जा रहा है।

प्यारे रामवृक्ष जी,आपका ऐसा सोचना ही विडम्बना है। देवी-देवता इत्यादि आपकी सहायता नहीं कर सकते हैं। आप अपने साठ वर्ष की आयु के पूर्व की स्थिति में वापस भी नहीं जा सकते हैं। आपको तो वर्तमान में ही जीना पड़ेगा।

आप साधारण जन की भांति अपना समय भूत और भविष्य में मत खोएँ । आप उन्हीं भूतों को याद रखें जिनका प्रभाव वर्तमानपर है अथवा भविष्य पर होगा। शेष भूत को भूल जाएँ । भविष्य की अधिक योजना मत बनाएँ । वर्तमान में जीना सीखें। वर्तमान का सम्यक् प्रयोग करें। वर्तमान का सम्यक् प्रयोग ही मानव को महान बनाता है। वर्तमान का सम्यक् प्रयोग ही आपको सुखी भी बनाएगा।

द्वितीय खण्ड समाप्त

* भाग्य का बिडम्बना का तृतीय खण्ड प्रारम्भ

यह आश्चर्य नहीं कि व्यक्ति मर कैसे जाता है, आश्चर्य यह है कि मनुष्य जीता कैसे है? प्रत्येक क्षण जीना ही आश्चर्य है। इस संसार में जीना ही कठिन है।

जन्म लेना ही दुःख है, मानव का प्रत्येक क्षण दुःख में ही गुजरता है। मानव जिसे आनन्द कहता है। वह आनन्द भी कालान्तर में दुःख का कारण सिद्ध होता है।

यथा बचपन में आतिशबाजी (क्रैकर्स तोड़ना) छोड़ना आनन्द दायक प्रतीत होता है, किन्तु यही आतिशबाजी कालान्तर में बहरापन लाती है। बचपन में खेलकूद पसन्द होता है, पढ़ाई बुरी लगती है। इसका भी फल कालान्तर में अच्छा नहीं होता है।

अधिकांश मानव भूत में जीता और मरता है। अपने जीवन का तीन चौथाई भूत की चर्चा में ही व्यतीत करता है। भूत से एकाएक भविष्य के चिन्तन में कूद जाता है। भूत की चर्चा और भविष्य के चिन्तन में ही मानव अपना वर्तमान खो देता है।

अधिकांश मानव को भूत अच्छा और वर्तमान बुरा लगता है, सतत् भूत की प्रसंशा करता है। और वर्तमान की निन्दा। यह एक भयंकर भूल है। यह गल्ती स्मृति के कारण होती है। मानव दुःख को प्रायः भूल जाता है। अधिकांश दुःख याद नहीं रहते, केवल वही दुःख याद रहता है। जिससे मृत्यु जैसी पीड़ा हुई हो।

प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को मैं यह कहते सुनता हूँ। बचपन बहुत अच्छा है, इत्यादि। यहाँ यद्यपि पूछा जाये, क्या आपको बचपन याद है? क्या आपको बिद्यार्थी जीवन की परेशानियाँ याद हैं? उत्तर कुछ नकारात्मक ही मिलेगा।

अपना बचपन बिल्कुल याद नहीं है, बिद्यार्थी जीवन की कुछ घटनायें (सुखद घटनायें) अवश्य याद होंगी। जवानी का भी यही हाल है। यदि मैं यह पूछ दूँ, कि 8 दिवस की सकल घटनाओं का विवरण दें, तो सकल घटनाओं का विवरण देना कुछ असम्भव ही होगा।

बिद्यार्थी जीवन में पढ़ाई बुरी लगती है, जगना दुःखदाई प्रतीत होता है। पाठ याद करना, परीक्षायें देना इत्यादि दुःखदाई ही प्रतीत होता है। किन्तु कालान्तर में वही व्यक्ति कहता है, अरे, विद्यार्थी जीवन बड़े मौज का होता है।

बचपन में बच्चा खेलना चाहता है। माँ उसे नियन्त्रण में रखती है। उस समय बच्चे को अत्यन्त दुःख होता है किन्तु, वह दुःख याद नहीं रहता है। अतः व्यक्ति, बचपन को अच्छा कहता है।

भूत की चर्चा करने वाला और भूत की प्रसंशा करने वाला प्रायः दुःखी ही रहता है।

साधारण जन समूह से लेकर साधु-सन्यासी भी इस बुराई से बचे नहीं हैं। अधिकांश जन शोषण और अनैतिक व्यवहार में ही लगे हैं। उदर और शिशन (शिश्न) ही जीवन के लक्ष्य हैं। अधिकांश मानव को उदर और शिश्न ही जिसका लक्ष्य है। ऐसे मानव का दुःखी होना स्वाभाविक है।

साधारणतः कहा जाता है कि गरीब में भगवान् बसता है। मेरा अनुभव कुछ और ही है। मैंने बहुत से गरीब ऐसे देखे हैं। जो साक्षात् शैतान की मूर्ति हैं। वस्तुतः भगवान उसमें बसता है। जो भगवान को बसाना चाहता है। भगवान गरीब, अमीर, साधु-सन्यासी में नहीं बसता है। भगवान मन्दिर, मस्जिद, गिरिजा घर, गुम्मा में भी नहीं बसता है। भगवान शुद्ध हृदय में बसता है। शुद्ध हृदय गरीब की बपौती नहीं है। शुद्ध हृदय शुद्धता की उपासना →

सर्वत्र सम भाव से व्याप्त है, किन्तु प्रगट होता है शुद्ध हृदय में ही।

प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह साधु-सन्यासी हो अथवा चोर-गुण्डा चाहे राज कर्मचारी हो अथवा राजनैतिक नेता, विद्वान हो अथवा मूर्ख, सभी सही सोचते हैं। मैं ठीक हूँ। मेरा सोचना ठीक है। यह दोष आप मुझमें भी आरोपित कर सकते हैं, किन्तु यह आपकी भूल ही होगी।

मुझमें आपमें यही अन्तर है। मैं जानता हूँ, मैं क्या हूँ ? आप नहीं जानते कि आप क्या हैं ? मेरा सोचना कभी होता ही नहीं है। मैं कभी सोचता ही नहीं हूँ। आप सोचते हैं, इत्यादि - शेष कभी मिलने पर।

मैं ऊपर के उदाहरणों से यही समझाने का यत्न कर रहा हूँ कि दुनियाँ का काम अपने ढंग से ही होगा। आपके सोचने और मानने मात्र में दुनियाँ में कोई परिवर्तन नहीं आयेगा। प्रकृति अपने ढंग से ही काम करेगी। आप अभी तक विद्या प्रेम और अध्ययन के कार्य को ईश्वर सेवा समझते रहे। मानव-सेवा (अध्यापन द्वारा) की। पुण्य मानते रहे किन्तु आपको इस पुण्य का क्या फल मिला है। यह आप स्वयं जानते हैं। आपने अपने पत्र 12.10.1978 में अपना 07.10.1978 का अनुभव-लिखते समय गोरखपुर विश्वविद्यालय के कुल सचिव का कटु-व्यवहार लिखकर यह सिद्ध कर दिया है कि अध्यापन द्वारा मानव-सेवा पुण्य नहीं है। भगवन् पुण्य का फल तो सुख होता है। दुःख तो पाप का फल है। पाप गल्ती का दूसरा नाम है। हाथ काटने से कष्ट होता है। अतः हाथ काटना पाप है। वे सभी कार्य जिनसे तत्काल अथवा कालान्तर में दुःख की अनुभूति हो पाप है। पुण्य इसके विपरीत है।

मैं पुनः कहता हू कि किसी गम्भीर विषय को केवल तर्क द्वारा ही नहीं समझाया जा सकता है। वास्तविक समझ तो अनुभव से आती है। आज के 60 वर्ष पूर्व आपका सोचना कुछ और था और अब कुछ और-आज आपका सोचना भिन्न है। आपकी सभी पुरानी मान्यतायें प्रायः डगमगाती प्रतीत होती हैं। यह हाल आपका ही नहीं है, यह हाल प्रायः प्रत्येक व्यक्ति का होता है। नौकरी करने वालों में ऐसा होना स्वाभाविक है। नौकरी के दिन अच्छे बीतते हैं। अज्ञानता वश व्यक्ति समझता है कि सम्पूर्ण जीवन ठीक ही बीतेगा-किन्तु रिटायर्ड होते ही स्वप्न टूट जाता है।

आज से कुछ दिन पूर्व ही 26 नवम्बर 1978 को मैं उपलेटा आया। श्री प्रताप डी0 पंडित सिविल जज फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट के घर ठहरा। श्री प्रताप जी सब मिलाकर अच्छे हैं, किन्तु अभी बचपना लगा है। बचपना के साथ-साथ अपने पद का अभिमान भी, इस अभिमान के कारण वे पूजा-पाठ, साधना इत्यादि को वे क्रीम-पाउडर की संज्ञा देते हैं। अपनी सेवा रूपया कमाना, मानव सेवा इत्यादि को ही ईश्वर-भक्ति समझते हैं। कालान्तर में श्री पंडित जी की भी दशा वही होगी जो आपकी है। मैं सच कहता हूँ कि बहुत से साधु-सन्यासियों की दशा आपसे भी गई-गुजरी है।

उपर्युक्त बातें आपको अच्छी नहीं लगेगीं, किन्तु गम्भीरता से मनन करने पर आपको कुछ शान्ति मिलेगी। स्मरण रहे संसार दुःख मय है। दुकान, मकान में सुख ढूँढ़ना (खोजना) व्यर्थ है। यह भी सत्य है कि बिना दुकान, मकान के काम भी नहीं चलता है। रूपया ईश्वर के बाद दूसरा स्थान रखता है, किन्तु रूपया ही सब कुछ नहीं है।

अज्ञानता वश मानव रूपया कमाने के साधन को प्रभू-सेवा (ईश्वर-सेवा) मान लेता है। दुःखी होने पर ईश्वर की तरफ लौटता तो है किन्तु.....? स्मरण रहे- अ, आ, इ, ई इत्यादि वर्णमाला का अभ्यास करने वाले व्यक्ति को कोई आमद नहीं होता है। उसका तो खर्च ही खर्च होता है। अध्यात्म के क्षेत्र का भी यही हाल है। आप अभी अध्यात्म क्षेत्र का वर्णमाला सीख रहे हैं। आपका पूजा-पाठ वर्णमाला ही है।

ईश्वर उपासक कभी दुःखी नहीं होता है। दुःखी होता है संसार का उपासक। भ्रम वश अपने आपको ईश्वर का उपासक मान लेता है। इसके मानने से प्रकृति उसे सुख नहीं देती है। गलत तो गलत ही रहेगा।

ईश्वरोपासना का लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति होता है - धन प्राप्ति नहीं। धन प्राप्ति के लक्ष्य से ईश्वरोपासना भी धनोपासना ही कही जायेगी। हाँ इतना अवश्य अच्छा है कि धनोपासना में ईश्वर का नाम लिया जाय। अतः केवल धनोपासना से यह उपासना अच्छी है। ऐसे उपासक का धन उपासक के पास अधिक दिन रहता है। केवल धनोपासना का धन उपासक के पास अधिक दिन तक नहीं रहता है।

स्मरण रहे- धन प्राप्ति का रास्ता ईश्वर-प्राप्ति के रास्ते से भिन्न है। केवल धन चाहने वाले व्यक्ति कों कुछ हद तक अनैतिक होना पड़ेगा। और केवल ईश्वर चाहने वाले व्यक्ति को पूर्ण नैतिक होना पड़ेगा। परन्तु केवल पूर्ण नैतिक बनने मात्र से ही न तो धन मिलेगा न ईश्वर। धन प्राप्ति हेतु (नैतिकता के साथ) कुछ हद तक अनैतिकता और धन प्राप्ति के लिये अनुकूल परिश्रम आवश्यक है। ईश्वर प्राप्ति के लिये पूर्ण नैतिकता एवं ईश्वरोपासना परमावश्यक है।

अन्धकार और प्रकाश उभय मिलकर दिवस होता है। सत्य और असत्य मिथुनी कृत संसार है। संसार में महान बनने

पर सत्य की महिमा ही माननी पड़ेगी, किन्तु व्यवहार में सत्य और असत्य दोनों होंगे। राम, कृष्ण आदि का जीवन भी यही दिखाता है। केवल सत्य का वक्ता और श्रोता दोनों दुर्लभ है।

केवल सत्य तो निर्गुण निराकार ब्रह्म को ही भाता है। विदेह- मुक्ति की अवस्था में परा वाणी द्वारा बोला जाता है। असत्य जगत में केवल सत्य नहीं बोला जा सकता।

आप कुछ ऐसे भी उदाहरण दे सकते हैं जिनके बारे में कहा जाता है कि वे सर्वदा सत्य ही बोलते थे। किन्तु आप इन महापुरूषों के साथ नहीं रहे हैं। अतः उदाहरण पर पूर्ण विश्वास करना उचित नहीं होगा।

बिहार की एक घटना का उदाहरण यहाँ आवश्यक है। गाँधी जी का आन्दोलन बिहार में चल रहा था। उस समय एक अफवाह उड़ाई गई। गाँधी जी भगवान हैं। जब गाँधी जी को पकड़ कर जेल में डाला जाता है तो कुछ ही समय में जेल का ताला टूट जाता है। गाँधी जी को कमरे में बन्द कर दिया जाता है। तो गाँधी जी छत पर घूमते दिखाई देते हैं। इत्यादि-इत्यादि। अजीब सी भ्रामक बात फैलाकर बिहारियों की अज्ञानता का लाभ उठाया गया। कहीं-कहीं यह भी कहा गया कि गाँधी जी अजानुबाहु हैं। गाँधी जी अब नहीं रहे, किन्तु उनके फुल साइज फोटो अब भी मौजूद हैं। फोटो देखकर यह जाना जा सकता है कि गाँधी जी कैसे थे। गाँधी जी अजानुबाहु नहीं थे। कभी हो भी नहीं सकते। गाँधी जी पूर्ण नैतिक भी नहीं थे। राजनीति में पूर्ण नैतिक रहना सम्भव भी नहीं है। किन्तु इससे→
गाँधी जी की महत्ता घट नहीं जाती। गाँधी जी तो महान हैं और रहेंगे, किन्तु जनता की निगाहों में।

बिहार की उक्त घटना का उदाहरण देकर मैंने एक बार श्री बृज कृष्ण चाँदी वाला से पूछा-आप उस घटना के बारे में जानते हैं? उन्होंने कहा हाँ मैं जानता हूँ। मेरे पूछने का आशय समझकर श्री चाँदी वाला कुछ और बोले, अरे भाई यह सब ऐसा ही होता है। उस परिस्थिति में वैसा करना आवश्यक था इत्यादि। स्मरण रहे-श्री बृज कृष्ण चाँदी वाला बापू के साथ रहे हैं। बापू उन्हें बहुत प्यार करते थे। अभी बापू के बड़े भक्तों में से एक श्री बृज क:ष्ण चाँदी वाला भी हैं। यदि आप सत्यापन हेतु उनको पत्र लिखेंगे तो जबाब गोल-मटोल ही मिलेगा।

सब मिलाकर कहने का तात्पर्य यह है कि सांसारिक उपलब्धि संसार के तरीके से होती है। राम कृष्ण आदि के साथ भी यही नियम लागू है। बस इतने में समझ जावें, अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करें।

*** तृतीय खण्ड समाप्त ***

आपने "भाग्य की बिडम्बना" के चतुर्थ शुभारम्भ के अन्त में लिखा है, वस्तुतः मेरी समस्यायें सांसारिक हैं और उनकी पूर्ति में दैवी शक्तियाँ बाधक प्रतीत होती हैं। जिससे उनमें विश्वास उठता जा रहा है। आपका ऐसा लिखना स्वाभाविक है। आपने 60 वर्ष के बाद (अवकाश प्राप्त करके) भगवत्-उपासना की वर्णमाला सीखनी आरम्भ की है। वर्णमाला को सीखते हुए, आप अपने कल्पना जगत में डूब गये। आप सोचने लगे कि इस भक्ति और पूजा-पाठ से मेरी सकल कामनाओं की पूर्ति हो जायेगी। आपका ऐसा सोचना ठीक वैसा ही है। जैसे कि एक अशिक्षित व्यक्ति 60 वर्ष के बाद अ, आ, इ, ई इत्यादि, सीखना आरम्भ करके राज्यपाल जैसा रहना चाहे।

प्यारे, राम वृक्ष जी, दैवी शक्तियाँ सभी कार्यों में साधक होती हैं। दैवी शक्तियाँ तो बाधक होना जानती ही नहीं हैं। जो व्यक्ति दैवी-शक्ति को लौकिक उपलब्धियों में बाधक मानते हैं, वे अपनी अज्ञानता का परिचय देते हैं। इतना अवश्य है कि दैवी शक्तियाँ प्रबल प्रारब्ध को बदलती नहीं हैं। कर्म का फल तो भोगना ही पड़ता है।

स्मरण रहे :- जो व्यक्ति 60 वर्ष तक आपके जैसा सोचता है। वह 60 वर्ष के बाद आपकी तरह ही दुःखी होता है। इस कथन के सत्यापन हेतु आप अथवा कोई भी व्यक्ति प्रयोग कर सकता है। यदि आप बचपन से उपासना सीखे होते, तो आप न तो इस तरह दुःखी ही होते और न आपकी कलम से ऐसी बातें ही लिखी जाती।

सुख के क्षणों में मानव पूजा-पाठ करता नहीं है। विषय भोग और पैसे कमाने तथा सैर सपाटे से ही व्यक्ति को फुर्सत नहीं होती है। सुख के क्षणों में अजीब-अजीब सी कल्पना करने लगता है।

पूजा-पाठ को कास्मेटिक (सौन्दर्य प्रसाधन) की संज्ञा देता है। बिडम्बना यह है कि कास्मेटिक तो प्रयोग करता है, किन्तु पूजा-पाठ नहीं करता। यदि पूजा-पाठ को कास्मेटिक मानकर भी किया जाये तो बहुत बड़ी उपलब्धि हो सकती है।

पूजा-पाठ सुख की घड़ी समाप्त होने पर शुरू करता है। मानव को जब प्रतीत होता है कि अब मौज के दिन जाने वाले ही हैं, तब वह पूजा-पाठ चालू करता है। यह नियम सबके साथ लागू है। आपने भी ऐसा ही किया है।

अब आप घबरायें नहीं, घबराने से काम नहीं चलेगा। बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेय। समुझि बीती सो बीती।

पूजा- पाठ केवल मानसिक शान्ति हेतु ही करें। पूजा-पाठ करने से पूर्व अथवा बाद में अपनी कामना मत रखें। पूजा-पाठ करके पूजा-पाठ को भी ईश्वर को अर्पण कर दें। इसी में आपका कल्याण है।

आप मेरे शिष्य हैं, सत् साईं बाबा के भक्त हैं। इतिहास के विद्वान हैं। तार्किक और बहुश्रुत हैं। अतः आपको सब कुछ तर्क द्वारा समझाना सम्भव नहीं है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, श्री विष्णु स्वामी, श्री निम्बकाचार्य, श्री मध्वाचार्य, श्री बल्लभाचार्य, श्री राम नन्दाचार्य, श्री मध्वगौडेश्वराचार्य इत्यादि। अनेकानेक सम्प्रदाय की उपासना-पद्धति आपको अनुकूल नहीं पड़ेगी। आप सम्प्रदाय के चक्कर में मत आयें। आपको जो तरीका मैंने बताया है। उसी ढंग से साधना करें। हाँ मेरा बताया हुआ तरीका आपको बुरा लगे, तो आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा करने को आप स्वतन्त्र हैं।

आपने **"भाग्य की बिडम्बना"** के अन्तिम शुभारम्भ में जो

शेष आप अपने मन से कर रहे हैं। आपने अपने उस शुभारम्भ में लिखा है, बाबा आपसे पिछले जनवरी-फरवरी में प्रथम साक्षात्कार हुआ और तब से आपके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मैं आपके बतलाये मार्ग पर अग्रसर हुआ। प्रतिदिन स्नानादि से निवृत होकर सूर्य को जल देना..... दुर्गा जी की आरती के साथ प्रातःकाल की पूजा समाप्त करता हूँ।

भगवन्, इतना लम्बा पूजा-पाठ मैंने आपको नहीं बतलाया था, कारण मैं जानता हूँ कि आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। मैंने केवल जाप और ध्यान के लिए कहा था। आप पुनः इस पत्र को सम्यक् पढ़कर नीचे लिखे तरीके से उपासना करें। आपका कल्याण होगा।

रात्रि चर्या

भोजनोपरान्त इच्छा हो तो थोड़ा घूम लें। घूमने का स्थान स्वच्छ होना चाहिये। गन्दे स्थान पर भ्रमण करना लाभ के स्थान पर हानि पहुँचता है। भ्रमण के बाद अथवा बिना भ्रमण किये ही बज्रासन अथवा सुखासन पर बिस्तर पर ही बैठ जाँय। कम से कम 3 मिनट - अधिक से अधिक 15 मिनट बैठे रहें। तत्पश्चात् लेट जाना है।

साधना का प्रथम चरण

भोजनोपरान्त बिस्तर पर बैठते ही साँस शनैः - शनैः दीर्घ लें और दीर्घ छोड़ें। साँस की दीर्घता का मापदण्ड कुछ नहीं है। यह व्यक्ति के सामर्थ्य पर आधारित है। अतः बुद्धि का प्रयोग करें। साँस उतना दीर्घ कभी न लें जिससे आपको परेशानी हो। साँस छोड़ने के साथ भी यही नियम लागू है।

तीव्रता के साथ करें। ताकि मन में मन्त्र के अतिरिक्त कुछ रह न जाये। साँस लेते समय जितनी बार मन्त्र का स्मरण हो सके, साँस छोड़ती बार भी उतने ही का स्मरण हो। ऐसा प्रयास किया जाय। इस प्रयास में प्रयास हेतु न तो साँस अन्दर रोकना है और न बाहर ही। कुम्भक सर्वथा वर्जित है। साँस 11 बार लेना है और 11 बार छोड़ना है। एक सप्ताह तक इतना ही प्रतिदिन करना है।

साधना का दूसरा चरण

प्रथम चरण के बाद इच्छा हो तो आसन बदल लें। प्रथम चरण के अन्दर भी आसन बदला जा सकता है, किन्तु यदि कोई तकलीफ न हो तो आसन मत बदलें।

अब अपने उपास्य देव के चित्र पर एक टक देखें। मुखारविन्द अथवा चरणारविन्द पर एक टक देखें। आँख थकने से पूर्व ही आँख बन्द कर लें। मन ही मन ईष्ट की छवि को देखते रहें। आँख मत खोलें। छवि का स्थान यदि अन्धकार, आकाश अथवा प्रकाश ले ले तो भी आँख मत खोलें। घर-मकान-दुकान का विचार आते ही आँख खोल लें। यह क्रिया 3 बार आँख खोलकर और 3 बार आँख बन्द करके करनी है। एक सप्ताह तक इतना ही प्रतिदिन करना है।

साधना का तीसरा चरण

अब बिस्तर पर लेट जाना है। लेटे-लेटे मन ही मन जाप करना है। जाप तब तक करते रहना है-जब तक निद्रा न आ जाय। रात्रि में जब-जब नींद टूट जाय,लेटे-लेटे मन ही मन जाप करना है।

सावधानी

आपके कमरे में धुआँ और धूल नहीं रहना चाहिए। अगरबत्ती का धुआँ भी धुआँ है। कमरे में वायु संचार पर्याप्त होना चाहिए। मन्त्र जाप करते समय होंठ और जीभ नहीं हिलनी चाहिए। साँस इतनी लम्बी नहीं लेनी चाहिए जिससे परेशानी हो। कुम्भक भूल से भी नहीं करना चाहिए। उपर्युक्त नियम का पालन नहीं करने से हृदय रोग अथवा फुफ्फुस रोग (Hurt Or Lungs Disease) हो सकता है। यदि उपर्युक्त नियम का पालन करते हुए साधना की जाय तो हृदय रोग इत्यादि से मुक्ति मिल सकती है। शेष आपकी इच्छा।

दिनचर्या

प्रातःकाल उठते ही शौच जायें। यदि उषा पान करके शौच जायें तो अच्छा है। उषा पान यदि प्रतिकूल पड़े तो उषा पान बिल्कुल नहीं करना चाहिए। शौचालय में केवल 3 मिनट बैठें। शौच हो अथवा नहीं हो हाथ धोकर बाहर आ जायें। कुल्ला इत्यादि करके पुनः बिस्तर पर बैठ जायें। मुँह हाथ धोना और स्नानादि बाद में होगा।

बिस्तर में ही सुखासन अथवा पद्मासन पर बैठकर रात्रि चर्या में वर्णित साधना के प्रथम और द्वितीय चरण का अभ्यास करें।

अब मुँह धोयें और स्नानादि करें। स्नानादि के पश्चात् जलपान करके अथवा जलपान किये बिना (जैसी अनुकूलता हो) पुनः रात्रि चर्या में वर्णित साधना के प्रथम और द्वितीय चरण का अभ्यास करें। अब अपने काम में लग जावें।

इस समय की साधना आप अपने उपासना गृह में कर सकते हैं। उपासना गृह में भी वायु संचार पर्याप्त होना चाहिए। आपका उपासना गृह भी धुआँ और धूल रहित होना चाहिए।

अज्ञानता भी अज्ञानता ही है। पूजा-पाठ के नाम पर अज्ञानता, आलस्य, अविवेकता, मूर्खता, क्लीवता इत्यादि का संवर्धन करने वाला व्यक्ति सतत् दुःखी ही रहता है और भविष्य में सतत् दुःखी रहेगा। यही हाल है नैतिकता के साथ भी।

अज्ञानी, बेवकूफ, भोंदू, आलसी, अविवेकी और क्लीव नैतिक (सच्चा और ईमानदार) व्यक्ति सतत् दुःखी ही रहता है। केवल नैतिकता और पूजा-पाठ का भौतिक-सुख से कोई सम्बन्ध नहीं है।

आप जानते हैं कि अच्छे स्वास्थ्य हेतु शुद्ध वायु चाहिए। आप यह भी जानते हैं कि आग जलाने से कुछ ऐसी गैसें बनती हैं जो स्वास्थ्यप्रद नहीं है। आप यह भी जानते हैं कि आयुर्विज्ञान के सिद्धान्तों को साधारण जन चुनौती नहीं दे सकते हैं। अतः साधारण जन की भाँति आप उपासना करें। देखा-देखी रोग हो जाता है। ठीक ही कहा है। देखा-देखी करें योग छीजै काया आवै रोग।

स्नानादि अपनी शारीरिक अनुकूलता पर निर्भर(आधारित) है। जिन क्रियाओं के प्रति शरीर की स्वाभाविक विरक्ति हो, उनसे सर्वथा दूर रहना चाहिए। जिन क्रियाओं के प्रति शरीर और मन की स्वाभाविक आशक्ति हो उन क्रियाओं पर नियन्त्रण रखना है। यह नियम सर्वत्र लागू है। सिद्ध बनने के पश्चात् यह नियम सिद्ध पर लागू नहीं होता है। किन्तु सच्चा सिद्ध साधारणतः इस नियम का उल्लंघन नहीं करता है। सिद्ध तो मर्यादा का पालन करता और करवाता है। हाँ चुनौती का जबाब चुनौती से भी कभी-कभी देता है।